'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ११६ | वाराणसी, शनिवार, १० अक्टूबर, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

स्वागत-प्रवचन

पठानकोट (पंजाब) २२-९-'५९

पूर्ण या परिपूर्ण ? एक जीवन-दृष्टि

यहाँपर सर्व-सेवा-संघ के सेवक इकट्ठा होनेवाले हैं और कुछ सलाह-मशविरा कर के फिर अपनी जगह जाकर काम करनेवाले हैं। सर्व-सेवा-संघ हिन्दुस्तान में एक छोटी-सी जमात है, लेकिन काम करनेवाली जमात है, झगड़ालू जमात या सिर्फ बोलनेवाली जमात नहीं है। इसमें आप बहुत ज्यादा विद्वान लोग नहीं पायेंगे। सियासतदाँ तो बहुत होंगे ही नहीं। लेकिन ऐसे लोग होंगे, जो कि आम जनता की सेवा के लिए वर्षों से काम करते आ रहे हैं और उसके लिए जिनके दिलों में एक तड़पन है।

पठानकोट : प्रस्थानकोट

स्वराज्य-प्राप्ति को अब बारह साल हो गये हैं। बारह साल में अपने देश ने काफी अनुभव लिये हैं। इस जमाने के बारह साल याने पुराने जमाने के पचास साल की बराबरी के हैं। यह साइन्स का जमाना है, जिसमें समाज में बहुत जल्दी फर्क पड़ता है; बहुत जल्दी तबदीली लायी जा सकती है। इस लिहाज से यह छोटा अरसा नहीं माना जायगा। बारह साल में हमें जो तजुर्बे हुए, उससे हमें क्या-क्या सबक मिले, इसपर नागरिकों को सोचना चाहिए। खास कर पठानकोट के नागरिकों को। मैंने इसे प्रस्थानकोट नाम दिया है। यहाँसे एक तरफ कश्मीर, दूसरी तरफ हिमाचल, तीसरी तरफ पाकिस्तान और उधर पंजाब है। चारों तरफ यहाँसे प्रस्थान कर सकते हैं, इसलिए यहाँपर आप अपनी जिन्दगी में कुछ बात लायेंगे तो वह चारों ओर फैलेगी। ऐसा यह खास मुकाम है। तो यहाँके लोगों को विचार ठीक से परखना चाहिए, ऐसी अपेक्षा हम रखें तो बेजा नहीं होगा।

दूसरा तरीका ढूँढ़ना होगा

इन बारह सालों में मुख्तलिफ सूबों में जो राज्य चल रहा है, उससे सबको तसल्ली नहीं है। यह बात ठीक है कि यह हमारा राज्य है, हमारे नुमाइन्दे राज चलाते हैं और अच्छे-से-अच्छे लोग जो मुहैया थे, उन्हींमें से हमने जगह-जगह राज्य चलाने के लिए भेजे हैं। वे लोग अपनी पूरी अक्ल और ताकत देश की खिदमत में लगा रहे हैं, इसमें कोई शक नहीं है। उन्होंने जो काम किया, उसकी दुनिया के दूसरे देशों के साथ तुलना करें तो कहना पड़ेगा कि हिन्दुस्तान जैसे देश में जो कि करीब ढाई सौ साल दूसरे लोगों के हाथ में था, बाहरवालों की हुकूमत में था, जिसे अपना कारोबार देखने की अक्ल नहीं रही है, वह देश स्वराज्य का नये सिरे से आयोजन कर रहा है। उस लिहाज से हमने इन बारह सालों में काफी अच्छा काम किया है, ऐसा मानना पड़ेगा। तिसपर भी जो राज्य चला है, उससे बहुत ज्यादा समाधान नहीं हुआ है, यह कह सकते हैं। इसमें किसीका कोई खास दोष नहीं है। हमने जो चन्द लोग राज्य चलाने के लिए भेजे हैं, वे नालायक हैं, इसलिए दूसरे लोगों को भेजा जाय तो काम ठीक चलेगा—ऐसी आशा कोई रखे तो वह बिलकुल बेबुनियाद आशा होगी, जो सफल नहीं होगी। आज जो आदमी हुकूमत में भेजे गये हैं, उनसे बेहतर आदमी हिन्दुस्तान में नहीं हैं, ऐसी भी बात नहीं है। परन्तु जो भेजे गये हैं, वे भी अच्छे आदमी हैं। तिसपर भी जो अनुभव आया, जो नतीजा देखा गया, उसपर से ध्यान में आता है कि हिन्दुस्तान में राज्य चलाने का दूसरा कोई तरीका ढूँढ़ना होगा।

लोकशाही का तरीका

हिन्दुस्तान में राज्य का जो तरीका हमने अजमाया, वह यहाँकी आबोहवा के लिए, हालात के लिए माकूल नहीं साबित हुआ। इसके माने यह नहीं कि लोकशाही का तरीका कतई गलत है। दुनिया में राज्य चलाने के जो तरीके हैं, उसमें लोकशाही एक बेहतरीन तरीका है, यह मानी हुई बात है। उसमें दो राय नहीं हैं। इसपर भी समझना चाहिए कि परदेश से आयी हुई चीज हम अपनी हवा में रखते हैं तो उसका रूप कुछ बदलना पड़ता है। कुछ बदलने पर ही वह चीज यहाँ काम देती है। उसे यहाँकी आबोहवा के लिए अनुकूल बनाना पड़ता है। लोकशाही में कुछ ऐसी चीज हो, जिसकी हम नफरत करें, ऐसी बात नहीं है। लोकशाही अच्छी होते हुए भी यहाँकी आबोहवा के मुताबिक इसमें फर्क करना जरूरी है।

जन-हित की ओर

आज दुनिया भर में जो कुछ हालात हैं, उनका असर हमारा देश टाल नहीं सकता है और हमारे देश में हम जो कुछ करेंगे, उसका असर दुनिया टाल नहीं सकती है। आज देशों के बीच दीवालें नहीं रही हैं। इधर से उधर और उधर से इधर हवा बहती है, इसलिए दुनिया का हिन्दुस्तान पर और हिन्दु-

www.vinoba.in

स्तान का दुनिया पर असर होना लाजमी है। आज दुनिया के चारों ओर क्या चल रहा है? लोकशाही का बुनियादी तत्त्वज्ञान हमें जिन लोगों से मिला है, उनमें फ्रान्स के तत्त्वज्ञानियों की गिनती है। फ्रान्स एक ऐसा देश है, जहाँ एक उमदा जबान है, जिसमें डेमॉक्रेसी के अच्छे विचार प्रकट हुए हैं और वहाँ से दुनियाभर में फैले हैं। इनका दुनिया के राजनीतिक चिंतन पर असर हुआ। ऐसे दुनिया के दस-पाँच विचारकों में फ्रान्स के दो-चार नाम होना लाजमी है। इस तरह से जिस फ्रेंच साहित्य ने दुनिया पर असर डाला है, उस फ्रान्स की आज क्या हालत है? वहाँपर कोई भी राज्य स्थिर नहीं रहा, हालत डाँवाडोल रही। लोकशाही में चुनाव के बाद चुनाव होते गये और आखिर एक शख्स के हाथ में राज्य सौंप दिया गया और वह जैसा चल रहा है, उससे बेहतर राज चलाने की ताकत डेमॉक्रेसी के खयाल से वहाँके लोग नहीं महसूस करते हैं। यह फ्रान्स की हालत है, जो डेमाक्रेसी के खयाल में एक ऊँचा देश माना जाता है। पाकिस्तान की बात तो मैं छोड़ देता हूँ, क्योंकि वह राष्ट्र कोई बहुत बड़े उसूल पर नहीं बना था, इसलिए वहाँपर एक आदमी का राज्य चल रहा है, इसकी शिकायत मैं नहीं करता हूँ, बल्कि मुमकिन है कि पाकिस्तान में पिछले दस साल में जो राज्य चला, उससे वहाँके लोग तंग आ गये और आज जो चल रहा है, उसमें वे खुश-हाल भी होंगे। उसे अच्छा भी समझते होंगे। इसलिए पाकिस्तान की बात मैं यही छोड़ देता हूँ, लेकिन दूसरे मुल्कों में भी आज यही चल रहा है।

एशिया में लोगों को किसी राज्य-पद्धति का आग्रह है, राज्य चलाने का फलाना तरीका ही चलना चाहिए, ऐसा आग्रह है? लोगों को किस बात की फिक्र है? दुनिया में मेडिकल ट्रीटमेंट करनेवाले तरह-तरह के लोग होते हैं। एलोपैथी, होमियोपैथी, नेचरोपैथी वगैरह दस-पाँच पैथीज़ होती हैं, जिनके अभिमानी लोग अपनी-अपनी पैथी की स्तुति के राग आलापते रहते हैं। लेकिन क्या बीमार को किसी पैथी का अभिमान या आग्रह होता है? उसे तो इसी बात का आग्रह होता है कि किसी तरह उसकी बीमारी मिटे। कोई ऐसा उसूलवाला बीमार भी होता है, जो कहता है कि मैं फलानी पैथी की ही दवा लूँगा, दूसरी पैथी की दवा नहीं लूँगा? ऐसा खास खब्त रखनेवाला तो खब्ती ही कहलायेगा। मैंने ऐसे कुछ लोग देखे हैं, लेकिन दुनिया में ऐसे लोग थोड़े हैं। बाकी सब लोगों का यही आग्रह रहता है कि उनकी बीमारी मिटे। इसी तरह जनता का किसी खास पद्धति का आग्रह नहीं होता है। जनता का यही आग्रह रहता है कि उसकी जिंदगी अच्छी चले। डेमॉक्रेसी ही चलनी चाहिए, सोशियालिज्म, कम्युनिस्ट स्टेट, वेलफेयर स्टेट, मिलिटरी राज्य, प्रोलेटेरिएट की डिक्टेटरशिप या और किसीकी डिक्टेटरशिप का आग्रह उसे नहीं है। भूखों को यह आग्रह है कि उन्हें खाना मिले। बेकारों का यह आग्रह है कि उनकी बेकारी मिटे। बीमारों का यह आग्रह है कि उनकी बीमारी मिटे। दुःखियों का यह आग्रह है कि उनका दुःख मिटे। कमजोरों का यह आग्रह है कि उनकी ताकत बढ़े। अशिक्षितों का यह आग्रह है कि उन्हें तालीम मिले। बेघरबार लोगों का यह आग्रह है कि उन्हें अच्छे घर मिलें। इसके सिवाय लोगों का और किन-किन चीजों का आग्रह है, यह आप देखेंगे तो पता चलेगा कि उनके जिंदगी के खयाल ठीक हैं। अपनी जिंदगी ठीक चले, यही उनका आग्रह है और कोई आग्रह नहीं है। इसलिए जो भी सिस्टम अच्छी होने का दावा करेगी, उसे अपनी अच्छाई का सबूत यही पेश करना होगा कि वह लोगों के मुतालबे, माँगें पूरी करें। जो सिस्टम लोगों के मुतालबे पूरे करने में काबिल साबित होगी, उसे लोग मानने के लिए राजी हैं। यूरोप, एशिया, अफ्रीका में यही चीज दिखायी दे रही है।

पुराने विचार शक्तिहीन

आखिर हमें सोचना चाहिए कि हमारे लिए सिस्टम है या सिस्टम के लिए हम हैं। हमारे लिए दवा है या दवा के लिए हम हैं। आपके दवाई के तजुरबे हमपर चलें, आप अपने प्रयोग हमारे शरीर पर करें, यह हम नहीं चाहते हैं। हमें समझना चाहिए कि कोई भी राज्य-पद्धति हमारे लिए है। लोगों से बार-बार कहा जाता है कि तुम्हें अपने देश के लिए मर मिटना चाहिए। पहले के जमाने में इधर सैकड़ों की और उधर भी सैकड़ों की फौजें हुआ करती थीं। फिर हजारों की, लाखों की फ़ौजें आमने-सामने खड़ी होने लगीं और अब तो करोड़ों की फौज मैदानेजंग में, रणक्षेत्र में आमने-सामने खड़ी होती हैं। इस हालत में लोगों से कहा जाय कि देश के लिए मर मिटो तो कहेंगे अब और देश कौन बचा है? हम ही तो देश हैं। हम मर मिटेंगे तो क्या बचेगा? जब देश के करोड़ों लोगों के लिए हजार लोगों के मर मिटने की बात कही जाती थी, तब तो ठीक था, लेकिन अब करोड़ों को मर मिटने के लिए कहा जाता है, तब वे पूछेंगे कि हम और हमारे बाल-बच्चों के अलावा देश में और कौन है? किनके बचाव के लिए हम मर मिटें? क्या पेड़ों के, पहाड़ों के, पत्थर के बचाव के लिए मर मिटें? हम ही तो देश हैं। इसलिए देश के लिए मर मिटने की बात पुराने जमाने में चलती थी, लेकिन इस टोटल वार के जमाने में देश के लिए मर मिटो, इस कहने का कोई मानी ही नहीं है।

इलेक्शन का मकसद

पिछले महायुद्ध में चर्चिल से पूछा गया था कि लड़ाई का मकसद जाहिर करो, तब लड़ने में जोश आयेगा। चर्चिल इसका जवाब नहीं देता था, लेकिन एक दिन उसने सोचा कि जवाब देना ही चाहिए। उसने कहा कि "तुम कैसे मूरख हो? मुझसे पूछते हो कि लड़ाई का मकसद क्या है? लड़ाई का मकसद क्या हो सकता है, सिवाय इसके कि फतह हासिल की जाय। क्या लड़ाई हारने के लिए होती है?" इसलिए लड़ाई जीतना, यही उसका मकसद है। इसी तरह से हमारे यहाँ भी इलेक्शन का मकसद, प्रोग्राम जाहिर किया जाता है, लेकिन लोग यही समझते हैं कि इलेक्शन का मकसद है—इलेक्शन जीतना। इलेक्शन जीतने के लिए जिन हथकंडों का हथियाना जरूरी होता है, वे सब हथियाये जाते हैं। फिर आपके उसूल चाहे जो हों। यह तो किसीका उसूल नहीं हो सकता है कि इलेक्शन हारा जाय। इसलिए कहा जाता है कि 'एवरी थिंग इज फेयर इन लव एन्ड पॉलिटिक्स'। कहा जाता है कि इलेक्शन का नाजायज फायदा नहीं उठाना चाहिए। लेकिन लोग कहते हैं कि इलेक्शन में जो भी फायदा है, जायज ही है। इसलिए मैं मानता हूँ कि चर्चिल का जवाब बड़ा दिलचस्प था, इसमें कोई शक नहीं। क्योंकि जहाँ करोड़ों लोग आमने-सामने खड़े होते हैं, वहाँ यही सवाल पैदा होता है कि हमें जिन्दा रहना है या मरना है। इस हालत में पुराने जो देशाभिमान के, पैट्रिऑटिज्म, नैशनलिज्म के विचार थे, वे अब छोड़ देने पड़ेंगे। अब उन विचारों में यह ताकत नहीं रही है कि उनके लिए लोगों से मर मिटने के लिए कहा जाय।

मरने का ठीक ढंग

एक जमाना था, जब लोगों से कहा जाता था कि

www.vinoba.in

धर्म के लिए मर मिटो। ऐसा करने से तुम स्वर्ग में जाओगे, परियाँ यहाँ आकर तुम्हें स्वर्ग ले जायँगी। अब लोग पूछते हैं कि धर्म क्या है? बताओ। धर्म की व्याख्या करते-करते व्यास भगवान थक गये। उन्होंने इसकी तीसों व्याख्याएँ कीं और आखिर कह दिया, "धारणात् धर्मः" जिससे प्रजा का धारण होता है, वह धर्म है। इसपर लोग कहेंगे कि हमारा धारण होना, यही धर्म है तो हम नहीं लड़े, यही बेहतर धर्म है। इसलिए आज धर्म के लिए मर मिटने की बात चली गयी है। अब इन्सान इन्सान के साथ जीये और भलमनसाहत के साथ रहे, यही हम चाहते हैं। क्या वे स्वर्ग-वाले पुराने सारे ढकोसले अब चलेंगे? कहा जाता था कि स्वर्ग में जाओगे तो मेवे चखने को मिलेंगे और नर्क में जाओगे तो दुःख भुगतना पड़ेगा। इस तरह इधर आग, उधर बाग। इधर जन्नत, उधर जहन्नुम। आग का डर और बाग का लालच। यह सब क्या अब चलेगा? कुरानशरीफ में कहा है कि अच्छा काम करनेवाले, सवाब हासिल करनेवाले लोग जन्नत में जाते हैं तो वहाँ जाने पर कहते हैं, 'मुतशाबीहाद', अरे, हमें यहाँ वही चीज मिली, जो दुनिया में मिली थी। हमें समझना चाहिए कि हमने जिस अक्ल से यहाँपर जिंदगी बितायी, उसी अक्ल को लेकर जन्नत या जहन्नुम में जायेंगे? जिस अक्ल से हम अमृतसर में रहते थे, उसी अक्ल को लेकर लाहौर गये तो क्या फर्क पड़नेवाला है? वहाँ भी वही जिंदगी रहेगी। अगर आप यहाँ बेवकूफ साबित हुए होंगे, आपने अपने गाँव को नर्क बनाया होगा, गंदगी वैसी ही रहने दी होगी तो मरने के बाद आप जहाँ जायँगे, वहाँ क्या साफ-सुथरे रह पायेंगे? वहाँ भी आपको यही नर्क मिलेगा। क्योंकि आपकी अक्ल वैसी ही थी। लेकिन अगर आपने यहाँपर साफ-सुथरी जिंदगी बितायी होगी तो मरने के बाद आप स्वर्ग में जायँगे और वहाँ आपको वही साफ-सुथरी जिंदगी दीखेगी। मरने के बाद की जिंदगी याने 'एक्स्टेन्शन सर्विस' विस्तार-योजना है। आपका कम्युनिटी प्रोजेक्ट तो यहाँ का जीवन है। मरने के बाद भी जिंदगी कायम रहती है, यह कहना ठीक है, लेकिन वहाँपर आप किस किस्म की जिंदगी बितायेंगे, इसका लक्षण आप यहीं दिखा रहे हैं। इसलिए मरने के बाद आपको डराकर या ललचाकर बेजा लड़ाई के लिए तैयार किया जाय, यह बात अब होनेवाली नहीं है। अब मजहबवाली बात नहीं रही। राष्ट्र के लिए मर-मिटने को कहा जाय तो भी लोग कहेंगे कि हम जन्म पाये हैं तो काहे को मरें? लोगों से कहा जाता है कि 'योर्स ड्यूटी इज नॉट टु क्वेश्चन ह्वाई, योर्स ड्यूटी इज़ बट डू ऐन्ड डाई।' जो कोई आता है, लोगों को यही सुनाता है कि अरे तुम जन्मे हो तो मरनेवाले हो ही, इसलिए फलानी चीज के लिए मर मिटो, लेकिन लोग कहेंगे कि हमसे बार-बार मरने की बात क्यों कहते हो? हम जानते हैं कि हम मरनेवाले हैं, लेकिन हम ठीक ढंग से मरना चाहते हैं। वह ढंग हमें बताओ।

मुक्ति कैसे?

हमें समझना चाहिए कि अब लोग वही राज्य-पद्धति पसंद करेंगे, जिसमें इन्सान और इन्सानियत जी सकेगी। जो लोग यह वादा करेंगे, उन्हें अपना वादा साबित करना पड़ेगा। आज तो लोगों से कहा जाता है कि हमें चुनो तो आपको कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। हम आपको ऐसे ही स्वर्ग में ढकेल देंगे। हमें चुनोगे तो हम आपको मालामाल कर देंगे। हर कोई आकर यही कहता है कि आपका नसीब आजमाओ। लेकिन क्या हम भेंड़ हैं कि किसी गड़ेरिये पर अपना नसीब सौंप दें? अब इस तरह से नहीं चल सकता है। हमारा बारह साल का अनुभव कह रहा है कि जिनके हाथ में हमने बागडोर सौंपी थी, वे अच्छे ही लोग थे, लेकिन जो तरीका हमने चलाया, वह गलत था। अभी आपने केरल में एक तमाशा देखा कि वहाँ लोकशाही का क्या हाल हुआ? सब रथी, महारथी, अतिरथी वहाँ पहुँच गये। वहाँके एक मन्त्री ने हमें तार दिया कि कृपा करके आप केरल आइये। उस वक्त हम पीर-पंजाल लाँघकर गुलमर्ग पहुँचे थे। हमने कहा कि और सब तो वहाँ पहुँच गये, अब हमारा ही जाना बाकी रहा है। हम कश्मीर में रहे तो हमारी इज्जत रहेगी, इसलिए आखिर हम वहाँ नहीं गये, कश्मीर में ही रहे और हमारी इज्जत रह गयी। आखिर वहाँपर राष्ट्रपति का राज्य आया तो छुटकारा हुआ, ऐसा माना गया। हम पूछना चाहते हैं कि अगर इसमें छुटकारा है तो पहले से आखिर तक छुटकारा ही छुटकारा क्यों न रहने दिया? बीच में क्यों फिक्र में पड़े? लेकिन राष्ट्रपति का राज याने लाचारी है, ऐसा माना जाता है। वहाँपर फिर से चुनाव होनेवाले हैं। अगर फ्रांस जैसी हालत होगी और बार-बार चुनाव करने की नौबत आयेगी तो यह कहना कठिन है कि फिर-फिर से चुनाव करने का यह सिलसिला कब तक जारी रहेगा? फिर से जन्म और फिर से मरण यही चलता रहा तो इस जन्म-मरण के फेरे से हमें मुक्ति, नजात कैसे मिलेगी?

सभी मतदाताओं का प्रतिनिधित्व हो

केरल का प्रयोग बता रहा है कि आज की राज्य-पद्धति में फर्क करना जरूरी है। इङ्गलैण्ड की आबोहवा में जो पेड़ फलता-फूलता था, वह यहाँकी आबोहवा में सूखता जा रहा है। हमें यह समझ में ही नहीं आता है कि ५१ लोगों ने हमें वोट दिया तो हम बाकी के ४९ पर अपनी सेवा क्यों लादें? ५१ ने कहा कि हमारी सेवा करो तो हमारी याने किनकी? १०० लोगों की क्यों? ५१ की ही क्यों नहीं? इसकी कोई वजह नहीं कि ५१ लोगों ने वोट दिया तो जिन ४९ ने हमें वोट नहीं दिया, उनपर हम अपनी सेवा लादें? ५१ ने राम को वोट दिया और ४९ ने जान को दिया तो राम ५१ की सेवा करे और जान ४९ की करे। राम अपनी सेवा ४९ पर क्यों लादे? लेकिन जिन ५१ ने हमें वोट दिया, उनकी सेवा करने का अधिकार तो हमें प्राप्त होता है, लेकिन हम अपनी सेवा १०० लोगों पर लादना चाहते हैं और मिलिटरी के आधार पर सेवा लादी जाती है। इसकी कोई वजह है? हमें समझना चाहिए कि हमें इस प्रकार की कोई राज्य-व्यवस्था अपनानी होगी कि जिन्होंने मतदान किया, उन सबका प्रतिनिधित्व हो। खिचड़ी बने, खालिस दाल हम खायें तो वह हज्म नहीं होती है और लोटा लेकर दौड़ना पड़ता है। सिर्फ चावल खायें तो दस्त साफ नहीं होता है। इसलिए खिचड़ी बनायें तो लोटा लेकर भी दौड़ना नहीं पड़ेगा और दस्त भी साफ आयगा। फिर-फिर से चुनाव करना याने लोटा लेकर दौड़ने जैसा ही है। दिन में एक दफा शौच साफ हो, यह ठीक है। पाँच साल में एक दफा शौच हो, यह ठीक है। लेकिन हर आठ-दस महीने में हमें लोटा लेकर दौड़ना पड़े तो कहना होगा कि सेहत ठीक नहीं है। दाल हज्म नहीं होती। इसलिए खिचड़ी पकानी पड़ेगी।

डेमॉक्रेसी के विचार में हम हुकूमत चलाने के लिए हुकूमत नहीं चलाते हैं, बल्कि सेवा के लिए हुकूमत हाथ में लेते हैं।

इसलिए सबकी रजामन्दी चाहिए। सिर्फ मेजॉरिटी, बहुमत से काम नहीं चलेगा। एक जमाना था, जब अल्पमत का, अकलियत का राज चलता था। चाहे राजा का राज हो, सरदारों का हो, रोम के नागरिकों का राज हो या क्षत्रिय जमात का राज हो। आखिर वह अल्पमत का ही राज्य था। उसका 'रीएक्शन', प्रतिक्रिया होकर अब मेजॉरिटी का, अक्सरियत का मायनॉरिटी पर, अकलियत पर राज चल रहा है। यह सर्कस चल रही है। कभी घोड़े पर कुत्ता खड़ा होता है तो कभी कुत्ते पर घोड़ा खड़ा होता है। हमें सोचना चाहिए कि आखिर मेजॉरिटी के राज्य के मानी क्या हैं? हम अपने नुमाइंदे चुनकर भेजते हैं। ज्यादा लोग जिनको चुनते हैं, वे नुमाइंदे बनते हैं। लेकिन हम पूछना चाहते हैं. कि ज्यादा लोग ज्यादा अक्लवाले होते हैं या कम अक्लवाले? आपका तजुर्बा क्या है? ज्यादा लोग चुनेंगे याने मामूली अक्लवाले लोग ही चुने जायँगे। कोई असाधारण पुरुष नहीं चुना जायगा। क्या गुरु नानक आज होते तो चुने जाते, मिनिस्ट्री में लिये जाते, उनको कितने वोट मिलते? महाज्ञानी चुने नहीं जा सकते हैं, क्योंकि महाज्ञानी को पहचानने के लिए भी अक्ल चाहिए, उतनी अक्ल मुहैया न हो तो औसत अक्लवाले लोग चुने जायँगे, जो डेयरी के दूध के जैसे होंगे। डेयरी का दूध एक अच्छी-से-अच्छी गाय के दूध की बराबरी नहीं करता है और खराब से खराब गाय के दूध की बराबरी भी नहीं करता है। इसी तरह आज के राज चलानेवाले लोग औसत अक्लवाले होते हैं। औसत अक्लवालों से सर्वोत्तम राज्य चलेगा, यह नामुमकिन है।

बहुमत नहीं, सर्वमत हो

साइन्स के जमाने में औसत अक्लवालों के हाथ में मिलिटरी रही तो बड़ा खतरा है। तुलसी रामायण में रामराज्य का वर्णन करते हुए कहा है, 'दंड जतिन कर' संन्यासियों के हाथ में दंड था। आज तो सिपाहियों की ३२ इंच की छाती देखकर उनके हाथ में दंडा दिया जाता है। इस दंडे से राज चलता है तो वह किस अक्ल का राज होगा? दंड-शक्ति अगर किसी के हाथ सौंपनी है तो औसत अक्लवाले आदमियों के हाथ में सौंपना गलत है। अगर सर्वश्रेष्ठ मनुष्यों के हाथ में सौंपी जाय तो दंड-शक्ति का कम-से-कम उपयोग होगा और जो उपयोग होगा, वह ठीक होगा। अब तो हिन्दुस्तान में यह चलता है कि इधर से पत्थर फेंके जाते हैं और उधर से गोलियाँ चलायी जाती हैं। कम्युनिस्टों से पूछा जाता है कि तुमने कम्युनिस्ट होकर भी केरल में गोली क्यों चलायी? वे जवाब देते हैं कि तुमने उधर जितनी गोलियाँ चलायीं, हमने उससे कम ही चलायीं। इसका माने यह हुआ कि कम गोली चलानेवाला बहादुर साबित होगा। गोली कतई नहीं चलनी चाहिए, ऐसी बात कोई नहीं करता। आज की लोकशाही की पद्धति में औसत लोग ही चुने जायँगे तो उसमें कम-से-कम इतना तो हो कि सबकी राय ली जाय। अगर ऊँचे लोगों का मार्ग-दर्शन नहीं मिल रहा है, औसत लोगों का ही मिल रहा है तो औसत में ५१ लोगों की ही राय क्यों लेते हो? सौ की क्यों नहीं लेते? महापुरुषों के हाथ में सत्ता देने में भलाई है, भगवान के हाथ में, स्थितप्रज्ञ के या महाज्ञानी के हाथ में सत्ता रहे तो हमारी भलाई होगी। माँ की गोद में हम सोते हैं तो अपने को सुरक्षित महसूस करते हैं, लेकिन वह न हो और औसत अक्ल से राज चलाना पड़ता हो तो १०० की राय क्यों नहीं लेते हो, ५१ की ही क्यों लेते हो, इसका कोई उत्तर मुझे आज तक किसीने नहीं दिया। मुझसे पूछा जाता है कि या तो आप ५१ का राज पसन्द करो या ४९ का। दूसरा कोई चॉयस है ही नहीं।

मुझे पुराना किस्सा याद आता है। हम जब स्कूल में पढ़ते थे तो मास्टर साहब ने एक हिसाब रखा, जिसका उत्तर बीस लड़कों ने गलत लिखा और तीन लड़कों ने सही लिखा। इसलिए मास्टर साहब ने बीस लड़कों को नम्बर नहीं दिये, तीन को ही दिये। उन बीस में से एक लड़का खड़ा होकर बोला कि क्या हम बीसों गलत हैं और वे तीन ही सच्चे हैं? हम बीस एक बाजू हैं तो भी क्या गलत हैं? जहाँ मेजॉरिटी का राज चलता है, वहाँ इस प्रकार की हास्यास्पद बात चलती है। पुराने जमाने में मायनॉरिटी का राज चलता था और मेजॉरिटी की परवाह नहीं की जाती थी तो आज उसकी प्रतिक्रिया में मेजॉरिटी का राज चलता है और मायनॉरिटी की परवाह नहीं की जाती है।

मुख्य सत्ता अपने हाथ में रखें

हमें ऐसा तरीका ढूँढ़ना होगा, जिसमें राज्य के सब लोगों का प्रतिनिधित्व हो और सबकी मिली-जुली राय से काम चले। इसके लिए जरूरी है कि सबका कोई मिला-जुला प्रोगाम बनाया जाय। क्या कम्युनिस्ट पार्टी, जन-संघ, पी० एस० पी०—सब मिलकर कोई कॉमन ग्राउण्ड नहीं हैं, सबका कॉमन प्रोग्राम नहीं बन सकता है? चुनाव में उनके जो मैनिफेस्टो निकले हैं, उनमें आप देखेंगे कि हर कोई कहेगा कि हमारे हाथ में राज्य आयेगा तो हम गुर्बत मिटायेंगे, राज्य-कारोबार का खर्च कम करेंगे। हर मैनिफेस्टो में आपको यही चीजें मिलेंगी। याने राम-नाम लिए बगैर किसीका नहीं चलता है, फिर चाहे वह होटल-कीपर हो या भजन-मंडली हो। फिर यह क्यों नहीं होता है कि सब के मैनिफेस्टो में जो कॉमन बातें हैं, उन्हींका एक कॉमन प्रोग्राम बनाकर उतना ही लेकर राज्य चलाया जाय और उसीपर जोर दिया जाय। ऐसा होगा, तभी हिन्दुस्तान में कुछ काम बनेगा और यह पिछड़ा हुआ देश आगे बढ़ेगा। नहीं तो हर पाँच साल में फिर-फिर से अपना नसीब आजमाने की बात चलेगी तो यही होगा कि इधर प्लानिंग भी बढ़ रही है और उधर बेकारी भी। एक पंचसालाना योजना खत्म हुई, दूसरी खत्म हो रही है, तीसरी की तैयारी है, फिर भी बेकारी बढ़ ही रही है। इसलिए सर्वोदय का यह विचार है कि राज्य चलाने में सबके विचारों का समान अंश होना चाहिए और उसमें सबकी अक्ल इकट्ठा होनी चाहिए। इसके लिए हमें यह करना होगा कि गाँव-गाँव के लोगों को समझाना होगा कि आज जिस तरह तुम अपने नुमाइन्दों पर सभी मुख्य बातें सौंपते हो, वैसा मत करो। मुख्य बातें अपने हाथ में रखो और गौण बातें उनपर सौंपो।

एक बात और ध्यान में रखनी होगी कि नुमाइन्दों का चुनाव बहुमत से नहीं बल्कि सर्वमत से हो। नुमाइन्दे सबके हों। अपूर्णों के सहयोग से पूर्ण बनाने की बजाय पूर्णों के सहयोग से परिपूर्ण बनाना लोकशाही का ही बेहतरीन तरीका है।

[चालू]

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
पता : गोलघर, वाराणसी (उ० प्र०) फोन : १३९१ तार : 'सर्व-सेवा' वाराणसी
www.vinoba.in